



जाकर अपने आने का कारण उन्हें बताया। कुंती के मन में भी शंका हुई कि कहीं पुत्रों पर फिर कोई आफ़त न आ जाए।

विदुर ने उन्हें समझाया और धीरज देते हुए कहा—“देवी, आप निश्चित रहें। आपके बेटों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। वे संसार में खूब यश कमाएँगे और विशाल राज्य के स्वामी बनेंगे। आप सब बेखटके हस्तिनापुर चलिए।”

आखिर द्रुपद राजा ने भी अनुमति दे दी और विदुर के साथ कुंती और द्रौपदी समेत पांडव हस्तिनापुर को खाना हो गए।

उधर हस्तिनापुर में पांडवों के स्वागत की बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं। जैसाकि पहले ही निश्चय हो चुका था, युधिष्ठिर का यथाविधि राज्याभिषेक हुआ और आधा राज्य पांडवों के अधीन किया गया। राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने कहा—“बेटा युधिष्ठिर! मेरे अपने बेटे बड़े दुरात्मा हैं। एक साथ रहने से संभव है कि तुम

लोगों के बीच वैर बढ़े। इस कारण मेरी सलाह है कि तुम खांडवप्रस्थ को अपनी राजधानी बना लेना और वहीं से राज करना। खांडवप्रस्थ वह नगरी है जो पुरु, नहुष एवं ययाति जैसे हमारे प्रतापी पूर्वज की राजधानी रही है। हमारे वंश की पुरानी राजधानी खांडवप्रस्थ को फिर से बसाने का यश और श्रेय तुम्हीं को प्राप्त हो।”

धृतराष्ट्र के मीठे वचन मानकर पांडवों ने खांडवप्रस्थ के भग्नावशेषों पर, जोकि उस समय तक निर्जन वन बन चुका था, निपुण शिल्पकारों से एक नए नगर का निर्माण कराया। सुंदर भवनों, अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इंद्रप्रस्थ रखा गया। इंद्रप्रस्थ की शान एवं सुंदरता ऐसी हो गई कि सारा संसार उसकी प्रशंसा करते न थकता था। अपनी राजधानी में द्रौपदी और माता कुंती के साथ पाँचों पांडव तेईस बरस तक सुखपूर्वक जीवन बिताते हुए न्यायपूर्वक राज्य करते रहे।



13

जरासंध

इंद्रप्रस्थ में प्रतापी पांडव न्यायपूर्वक प्रजा-पालन कर रहे थे। युधिष्ठिर के भाइयों तथा साथियों की इच्छा हुई कि अब राजसूय यज्ञ करके सम्राट-पद प्राप्त किया जाए। इस बारे में सलाह करने के लिए युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को संदेश भेजा। जब श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि युधिष्ठिर उनसे मिलना चाहते हैं, तो तत्काल ही वह द्वारका से चल पड़े और इंद्रप्रस्थ पहुँचे।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—“मित्रों का कहना है कि मैं राजसूय यज्ञ करके सम्राट-पद प्राप्त करूँ। परंतु राजसूय यज्ञ तो वही कर सकता है, जो सारे संसार के नरेशों का पूज्य हो और उनके द्वारा सम्मानित हो। आप ही इस विषय में मुझे सही सलाह दे सकते हैं।”

युधिष्ठिर की बात शांति के साथ सुनकर श्रीकृष्ण बोले—“मगधदेश के राजा जरासंध ने



सब राजाओं को जीतकर उन्हें अपने अधीन कर रखा है। सभी उसका लोहा मान चुके हैं और उसके नाम से डरते हैं, यहाँ तक कि शिशुपाल जैसे शक्ति-संपन्न राजा भी उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके हैं और उसकी छत्रछाया में रहना पसंद करते हैं। अतः जरासंध के रहते हुए और कौन सम्राट-पद प्राप्त कर सकता है? जब महाराज उग्रसेन का नासमझ बेटा कंस जरासंध की बेटी से ब्याह करके उसका साथी बन गया था, तब मैंने और मेरे बंधुओं ने जरासंध के विरुद्ध युद्ध किया था। तीन बरस तक हम उसकी सेनाओं के साथ लड़ते रहे, पर आखिर हार गए। हमें मथुरा छोड़कर दूर पश्चिम द्वारका में जाकर नगर और दुर्ग बनाकर रहना पड़ा। आपके साम्राज्याधीश होने में दुर्योधन और कर्ण को आपत्ति न भी हो, फिर भी जरासंध से इसकी आशा रखना बेकार है। बगैर युद्ध के जरासंध इस बात को नहीं मान सकता है। जरासंध ने आज तक पराजय का नाम तक नहीं जाना है। ऐसे अजेय पराक्रमी राजा जरासंध के जीते जी आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकेंगे। उसने जो राजे-महाराजे बंदीगृह में डाल रखे हैं, किसी-न-किसी उपाय से पहले उन्हें छुड़ाना होगा। जब ये हो जाएंगे, तभी राजसूय करना आपके लिए साध्य होगा।”

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर शांति-प्रिय राजा युधिष्ठिर बोले—“आपका कहना बिलकुल सही है। इस विशाल संसार में कितने ही राजाओं के लिए जगह है। कितने ही नरेश अपने-अपने राज्य का शासन करते हुए इसमें संतुष्ट रह सकते हैं। आकांक्षा वह आग है, जो कभी बुझती नहीं है। इसलिए मेरी भलाई इसी में दिखती है कि साम्राज्याधीश बनने का विचार छोड़ दूँ और जो है उसी को लेकर संतुष्ट रहूँ।”

युधिष्ठिर की यह विनयशीलता भीमसेन को अच्छी न लगी। उसने कहा—“श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता, मेरा शारीरिक बल और अर्जुन का शौर्य एक साथ मिल जाने पर कौन सा ऐसा काम है, जो हम नहीं कर सकते? यदि हम तीनों एक साथ चल पड़ें, तो जरासंध की शक्ति को चूर करके ही लौटेंगे। आप इस बात की शंका न करें।”

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—“यदि भीम और अर्जुन सहमत हों, तो हम तीनों एक साथ जाकर उस अन्यायी की जेल में पड़े हुए निर्दोष राजाओं को छुड़ा सकेंगे।”

परंतु युधिष्ठिर को यह बात न जँची। उन्होंने कहा—“मैं तो कहूँगा कि जिस कार्य में प्राणों पर बन आने की संभावना हो, उसके विचार तक को छोड़ देना ही अच्छा होगा।”

यह सुनकर वीर अर्जुन बोल उठा—“यदि हम यशस्वी भरतवंश की संतान होकर भी कोई साहस का काम न करें, तो धिक्कार है हमें और हमारे जीवन को! जिस काम को करने की हममें सामर्थ्य है, भाई युधिष्ठिर क्यों समझते हैं कि उसे हम न कर सकेंगे?”

श्रीकृष्ण अर्जुन की इन बातों से मुग्ध हो गए। बोले—“धन्य हो अर्जुन! कुंती के लाल अर्जुन से मुझे यही आशा थी।”

जब जरासंध के साथ युद्ध करने का निश्चय हो गया, तो श्रीकृष्ण और पांडवों ने अपनी योजना बनाई। श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने वल्कल पहन लिए, हाथ में कुशा ले ली और व्रती लोगों का-सा वेष धारण करके मगध देश के लिए रवाना हो गए। राह में सुंदर नगरों तथा गाँवों को पार करते हुए वे तीनों जरासंध की राजधानी में पहुँचे। जरासंध ने कुलीन अतिथि



समझकर उनका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। जरासंध के स्वागत का भीम और अर्जुन ने कोई जवाब नहीं दिया। वे दोनों मौन रहे। इस पर श्रीकृष्ण बोले—“मेरे दोनों साथियों ने मौन व्रत लिया हुआ है, इस कारण अभी नहीं बोलेंगे। आधी रात के बाद व्रत खुलने पर बातचीत करेंगे।” जरासंध ने इस बात पर विश्वास कर लिया और तीनों मेहमानों को यज्ञशाला में ठहराकर महल में चला गया। कोई भी ब्राह्मण अतिथि जरासंध के यहाँ आता, तो उनकी इच्छा तथा सुविधा के अनुसार बातें करना व उनका सत्कार करना जरासंध का नियम था। इसके अनुसार आधी रात के बाद जरासंध अतिथियों से मिलने गया, लेकिन अतिथियों के रंग-ढंग देखकर मगध-नरेश के मन में कुछ शंका हुई।

राजा जरासंध ने कड़ककर पूछा—“सच-सच बताओ, तुम लोग कौन हो? ब्राह्मण तो नहीं दिखाई देते।” इस पर तीनों ने सही हाल बता दिया और कहा—“हम तुम्हारे शत्रु हैं। तुमसे अभी द्वंद्व युद्ध करना चाहते हैं। हम तीनों में से किसी एक से, जिससे तुम्हारी इच्छा हो, लड़ सकते हो। हम सभी इसके लिए तैयार हैं।”

तभी भीमसेन और जरासंध में कुश्ती शुरू हो गई। दोनों वीर एक-दूसरे को पकड़ते, मारते और उठाते हुए लड़ने लगे। इस प्रकार पलभर भी विश्राम किए बगैर वे तेरह दिन और तेरह रात लगातार लड़ते रहे। चौदहवें दिन जरासंध थककर ज़रा देर को रुक गया। पर ठीक मौका देखकर श्रीकृष्ण ने भीम को इशारे से समझाया और भीमसेन ने फ़ौरन जरासंध को उठाकर चारों ओर घुमाया और उसे ज़मीन पर जोर से पटक दिया। इस प्रकार अजेय जरासंध का अंत हो गया।

श्रीकृष्ण और दोनों पांडवों ने उन सब राजाओं को छोड़ा लिया, जिनको जरासंध ने बंदीगृह में डाल रखा था और जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध की राजगद्दी पर बैठाकर इंद्रप्रस्थ लौट आए। इसके बाद पांडवों ने विजय-यात्रा की और सारे देश को महाराज युधिष्ठिर की अधीनता में ले आए।

जरासंध के वध के बाद पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया। इसमें समस्त भारत के राजा आए हुए थे। जब अभ्यागत नरेशों का आदर-सत्कार करने की बारी आई, तो प्रश्न उठा कि अग्र-पूजा किसकी हो? सम्राट युधिष्ठिर ने इस बारे में पितामह भीष्म से सलाह ली। वृद्ध भीष्म ने कहा कि द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की पूजा पहले की जाए। युधिष्ठिर को भी यह बात पसंद आई। उन्होंने सहदेव को आज्ञा दी कि वह श्रीकृष्ण का पूजन करे। सहदेव ने विधिवत् श्रीकृष्ण की पूजा की। वासुदेव का इस प्रकार गौरवान्वित होना चेदि-नरेश शिशुपाल को अच्छा नहीं लगा। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और ठहाका मारकर हँस पड़ा। सारी सभा की दृष्टि जब शिशुपाल की ओर गई, तो वह ऊँचे स्वर में व्यंग्य से बोलने लगा—“यह अन्याय की बात है कि एक मामूली से व्यक्ति को इस प्रकार गौरवान्वित किया जाता है।”

युधिष्ठिर को यों आड़े हाथों लेने के बाद शिशुपाल सभा में उपस्थित राजाओं की ओर देखकर बोला—“उपस्थित राजागण! जिस दुरात्मा ने कुचक्र रचकर वीर जरासंध को मरवा डाला, उसी की युधिष्ठिर ने अग्र-पूजा की। इसके बाद उसे हम धर्मात्मा कैसे कह सकते हैं? उनमें हमारा विश्वास नहीं रहा है।”

इस तरह शब्द-बाणों की बौछार कर चुकने के बाद शिशुपाल दूसरे कुछ राजाओं



को साथ लेकर सभा से निकल गया। राजाधिराज युधिष्ठिर नाराज हुए राजाओं के पीछे दौड़े गए और अनुनय-विनय करके उन्हें समझाने लगे। युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भी शिशुपाल नहीं माना। उसका हठ और

घमंड बढ़ता गया। अंत में शिशुपाल और श्रीकृष्ण में युद्ध छिड़ गया, जिसमें शिशुपाल मारा गया। राजसूय यज्ञ संपूर्ण हुआ और राजा युधिष्ठिर को राजाधिराज की पदवी प्राप्त हो गई।



14

शकुनि का प्रवेश

एक दिन युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—“भाइयो! युद्ध की संभावना ही मिटा देने के उद्देश्य से मैं यह शपथ लेता हूँ कि आज से तेरह बरस तक मैं अपने भाइयों या किसी और बंधु को बुरा-भला नहीं कहूँगा। सदा अपने भाई-बंधुओं की इच्छा पर ही चलूँगा। मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा, जिससे आपस में मनमुटाव होने का डर हो, क्योंकि मनमुटाव के कारण ही झगड़े होते हैं। इसलिए मन से क्रोध को एकबारगी निकाल दूँगा। दुर्योधन और दूसरे कौरवों की बात कभी न टालूँगा। हमेशा उनकी इच्छानुसार काम करूँगा।”

युधिष्ठिर की बातें उनके भाइयों को भी ठीक लगीं। वे भी इसी निश्चय पर पहुँचे कि झगड़े-फसाद का हमें कारण नहीं बनना चाहिए। उधर युधिष्ठिर चिंतित हो रहे थे कि कहीं कोई लड़ाई-झगड़ा न हो जाए और इधर राजसूय यज्ञ का ठाट-बाट तथा पांडवों की यश-समृद्धि का स्मरण ही दुर्योधन के मन को खाए जा रहा था। वह ईर्ष्या की जलन से बेचैन हो रहा था। दुर्योधन ने यह भी देखा कि कितने ही देशों के राजा पांडवों के परम मित्र बने हैं। इस सबके स्मरण

मात्र से उसका दुख और भी असह्य हो उठा। पांडवों के सौभाग्य की याद करके उसकी जलन बढ़ने लगती थी। अपने महल के कोने में इसी भाँति चिंतित और उदास भाव से वह एक रोज़ खड़ा हुआ था कि उसे यह भी पता न लगा कि उसकी बगल में उसका मामा शकुनि आ खड़ा हुआ है।

“बेटा! यों चिंतित और उदास क्यों खड़े हो? कौन सा दुख तुमको सता रहा है?” शकुनि ने पूछा। दुर्योधन लंबी साँस लेते हुए बोला—“मामा, चारों भाइयों समेत युधिष्ठिर ठाट-बाट से राज कर रहा है। यह सब इन आँखों से देखने पर भी मैं कैसे शोक न करूँ? मेरा तो अब जीना ही व्यर्थ मालूम होता है!”

शकुनि दुर्योधन को सांत्वना देता हुआ बोला—“बेटा दुर्योधन! इस तरह मन छोटा क्यों करते हो? आखिर पांडव तुम्हारे भाई ही तो हैं। उनके सौभाग्य पर तुम्हें जलन नहीं होनी चाहिए। न्यायपूर्वक जो राज्य उनको प्राप्त हुआ है, उसी का तो उपभोग वे कर रहे हैं। पांडवों ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। जिस पर उनका अधिकार था, वही उन्हें मिला है। अपनी शक्ति